क्या हीमोग्लोबिन का विकल्प संभव है?

नरेन्द्र देवांगन

अनहोनी दुर्घटनाओं में खून बहने से होने वाली मृत्यु को रोकने के लिए डॉक्टर खून के ऐसे विकल्प की इच्छा करते हैं जो बिल्कुल हमारे रक्त के जैसा हो और बड़ी मात्रा में बनाया जा सके और संग्रहित भी किया जा सके। खून का ऐसा कोई विकल्प अब तक तो मात्र दिवास्वप्न ही था। अनेक जानकारियां उपलब्ध होते हुए भी वैज्ञानिक अभी तक खून के मुख्य अंश, हीमोग्लोबिन प्रोटीन का विकल्प नहीं बना सके हैं। परंतु जैव प्रौद्योगिकी के आने से अब इस स्वप्न के साकार होने की आशा बंधने लगी है।

वास्तव में हीमोग्लोबिन बनाना वांछित रचना और क्षमताओं वाला प्रोटीन बनाने का एक उदाहरण मात्र है। प्रोटीन अभियांत्रिकी से तो औषधि उद्योग का भविष्य ही बदल सकता है। शरीर की अनेक अभिक्रियाओं का संचालन करने वाले एंज़ाइम, शरीर के रासायनिक संदेशवाहक हार्मोन और रोगजनक रोगाणुओं के विरूद्ध शरीर की रक्षा करने वाले एंटीबॉडी आदि और कुछ नहीं, प्रोटीन ही तो हैं। प्रयोगशालाओं में इनके प्रतिरूप बनाकर दवाइयां, खाद्य पदार्थ, कागज़ और लुगदी उद्योग की बढ़ती मांग को पूरा किया जा सकता है।

प्रयोगशाला में प्रोटीन बनाना इतना सरल नहीं है। इसके लिए सम्बंधित प्रोटीन की संरचना को समझना और इसके प्राकृतिक संश्लेषण के बारे में जानना आवश्यक है। मूल रूप से प्रोटीन जीवों में पाए जाने वाले 20 प्रकार के विभिन्न अमीनो अम्लों या उनमें से कुछ का संयोजन होते हैं। अमीनो अम्लों की यह कड़ी प्रोटीन के काम का निर्धारण नहीं करती। मुख्य बात होती है प्रोटीन का आकार। अमीनो अम्लों की अनेक कड़ियां आपस में ऊन के रेशों की तरह लिपटी रहती हैं और एक सीढ़ीनुमा आकृति बनाती हैं। यह अंततः एक सिलवट या गांठ जैसा रूप ले लेती है, जिसे हम प्रोटीन कहते हैं। इस रचना का यह अंतिम स्वरूप ही प्रोटीन के कार्य का सही-सही निर्धारण करता है। एंज़ाइम, हार्मोन या एंटीबॉडी की तरह काम करने की प्रोटीन की अद्‌भुत शक्ति इनकी जटिल रचना में छिपी हुई है।

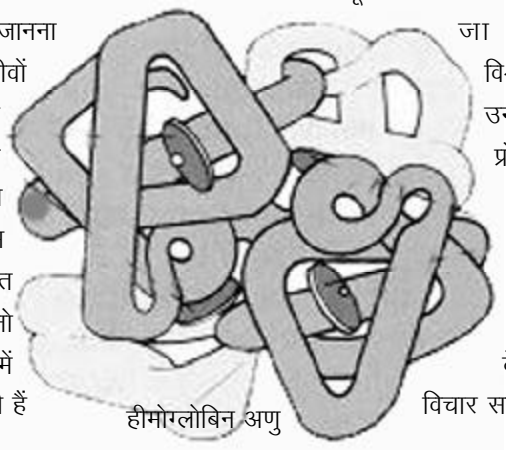

हीमोग्लोबिन अणु

प्रोटीन बनाने के लिए सबसे पहले तो यह जानना और समझना ज़रूरी है कि प्रोटीन के अंतिम स्वरूप का कौन-सा लक्षण इसके कार्य का निर्धारण कर रहा है। दूसरी आवश्यकता है प्रोटीन के प्राकृतिक संश्लेषण को समझना।

वैज्ञानिक प्रकृति की इस अनोखी क्रिया की न केवल नकल करने में सफल हुए हैं बल्कि कई बार उत्तम गुणवत्ता वाले प्रोटीन का उत्पादन भी कर सके हैं। चूंकि प्रोटीन के काम का निर्धारण उसका आकार करता है, अतः प्रोटीन बनाने के लिए सबसे पहला काम था प्रोटीन के प्रमुख कार्यकारी भाग का पता लगाना। लिपटे हुए प्रोटीन की संरचना एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी द्वारा देखी जा सकती है। इससे वैज्ञानिक छोटे-छोटे कणों की त्रिआयामी रचना विस्तार में देख सकते हैं। बेल्जियम के रसायन शास्त्रियों के एक समूह ने इस तकनीक का एक विकल्प विकसित किया है जिसमें कंप्यूटर पर प्रोटीन के आकार का प्रतिदर्श बनाया जा सकता है। कोर्टरिज्क विश्वविद्यालय के जॉन डेस्मेट और उनके साथियों ने अमीनो अम्ल से प्रोटीन का आकार बनाया है।

हीमोग्लोबिन का निर्माण इस तरह की प्रोटीन अभियांत्रिकी का एक उत्तम उदाहरण है। हीमोग्लोबिन को रक्त के विकल्प के रूप में प्रयोग करने का विचार सबसे पहले 1940 के दशक में

आया था मगर शुद्ध हीमोग्लोबिन देने से गुर्दा बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। वैज्ञानिकों के अनुसार यह समस्या अणुओं की संरचना के कारण उत्पन्न हुई। हीमोग्लोबिन अमीनो अम्लों की चार श्रृंखलाओं से बना होता है जिसमें दो अल्फा उप-इकाइयां और शेष दो बीटा उप-इकाइयां कहलाती हैं। लाल रक्त कणिका के अंदर ये आपस में मिलकर हीमोग्लोबिन का एक संयुक्त अणु बनाती हैं जबकि बाहर वे अल्फा और बीटा जोड़ों या डाइमर के रूप में अलग-अलग रहती हैं। ये डाइमर ही उक्त प्रयोग में गुर्दे को हानि पहुंचाने के लिए उत्तरदायी थे, क्योंकि लाल रक्त कणिकाओं के स्थान पर बाहर बनी हीमाग्लोबिन ऑक्सीजन के साथ इतनी मज़बूती से जुड़ गई कि ऊतकों को ऑक्सीजन नहीं मिल सकी। इस तरह स्वतंत्र हीमोग्लोबिन ने ऑक्सीजन प्रदान करने का अपना काम पूरा नहीं किया।

ब्रिटेन की आण्विक जीव विज्ञान प्रयोगशाला के डॉ. मैक्स पेरूट्स ने एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी द्वारा ऑक्सीजन सहित और ऑक्सीजन रहित हीमोग्लोबिन की रचना का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि हीमोग्लोबिन के ऑक्सीजन से जुड़ते ही चारों उप-इकाइयों की आपेक्षिक स्थिति और सब उप-इकाइयों की रचना बदल जाती है। कंप्यूटर पर हीमोग्लोबिन की रचना का अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिकों ने ऐसा हीमोग्लोबिन अणु बनाने का प्रयास किया जिसमें दोनों अल्फा श्रृंखलाएं आगे पीछे जुड़ती हैं। यह हीमोग्लोबिन दो में विभाजित नहीं हुआ क्योंकि दोनों भाग बहुत मज़बूती से जुड़े थे। एक समस्या तो इस तरह हल हो गई।

इंग्लैंड की आण्विक जीव विज्ञान की मेडिकल रिसर्च काउंसिल प्रयोगशाला के डॉ. क्योशी नागाई और अमरीका के सोमेटोजेन इंकॉर्पोरेटेड के ग्रेस्टेटलर ने बीटा उप-इकाई जीन में एक और परिवर्तन किया जिससे हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन के साथ इतनी मज़बूती से न चिपक सके और यह प्राकृतिक हीमोग्लोबिन की तरह ऊतकों को वांछित ऑक्सीजन प्रदान कर सके।

इन दोनों बाधाओं के दूर होते ही हम हीमोग्लोबिन निर्माण के लक्ष्य के निकट पहुंच गए हैं। लगता है कि हम हीमोग्लोबिन की मनचाही मात्रा बना सकेंगे और वह लाल रक्त कणिकाओं के हीमोग्लोबिन की तरह ऑक्सीजन आपूर्ति करने में सक्षम भी होगा। अब यह केवल कल्पना नहीं है। वैज्ञानिक पहले ही ऐसा बैक्टीरिया बना चुके हैं जिसमें हीमोग्लोबिन जीन जोड़ने से बड़ी मात्रा में इन्सानी हीमोग्लोबिन बनाया जा सकता है। लाल रक्त कणिका के बाहर भी हीमोग्लोबिन के ठीक से काम करने के लिए जिन परिवर्तनों की ज़रूरत होती है वे पता चल चुके हैं। किसी प्रोटीन के संश्लेषण के लिए निर्धारित जीन में परिवर्तन करने सम्बंधी तकनीकों का भी ज्ञान हो चुका है। इसलिए अब हीमोग्लोबिन जीन को इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है कि ये केवल हीमोग्लोबिन घटक के उत्पादन को ही निर्देशित करें। जब किसी ऐसे जीन को किसी बैक्टीरिया में लगा दिया जाएगा तो वह हीमोग्लोबिन की फैक्ट्री में बदल जाएगा।

किसी कोशिका के जीवित होने का रासायनिक आधार इसमें एंज़ाइमों की उपस्थिति होती है। कागज़, लुगदी, खाद्य और डिटर्जेंट उद्योग एंज़ाइम के बल पर ही चलते हैं। लगभग पिछली शताब्दी से जैव रसायनज्ञों, जैव भौतिकविदों और जीव वैज्ञानिकों ने एंज़ाइम की क्रिया पर से रहस्य का पर्दा उठाने के लिए बहुत काम किया है। हीमोग्लोबिन बनाने की अपेक्षा एंज़ाइमों को नया आकार देना ज़्यादा कठिन काम है। बीटा-लेक्टामेज़ नामक एंज़ाइम का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इस एंज़ाइम का उत्पादन रोगजनक बैक्टीरिया द्वारा किया जाता है जो उन्हें पेनिसिलीन जैसी एंटीबायोटिक औषधियों से बचाने के लिए रक्षा कवच का काम करता है। हो सकता है कि एक दिन औषधि निर्माताओं को ऐसे नए अणु ढूंढने का कठिन काम फिर से करना पड़े जिन पर इस एंज़ाइम का प्रभाव न हो और वे बैक्टीरिया का नाश कर सकें। बीटा-लेक्टामेज़ पर अब तक हुए अनुसंधान से यह ज्ञात हो चुका है कि ऐसा कैसे होता है। स्पष्ट रूप से बीटा-लेक्टामेज़ में अमीनो अम्लों का एक समूह होता है जो पेनिसिलीन के पूरक के रूप में उससे जुड़ा रहता है। जुड़ने के बाद तेज़ी से होने वाली रासायनिक क्रिया में पेनिसिलीन नष्ट हो जाता है। इसी के साथ एक छोटा अणु, जिसे लीविंग ग्रुप कहते हैं, तैयार होता है। बीटा-लेक्टामेज़ लगातार पेनिसिलीन के अन्य अणुओं से क्रिया करते हुए

उन्हें भी नष्ट कर देता है।

इस बात का पता लगते ही शिकागो विश्वविद्यालय के रसायनज्ञों ने एक नई एंटीबायोटिक दवा बनाई जो बैक्टीरिया को लाभप्रद स्थिति में ले आती है। एंटीबायोटिक को ऐसा आकार दिया गया है जिससे कि एक बार निकलने वाला लीविंग ग्रुप अपने आप ही बैक्टीरियारोधी बन जाता है। इस तरह एंटीबायोटिक को नष्ट करने वाला बीटा-लेक्टामेज़ बनाने वाला बैक्टीरिया ऐसा लीविंग ग्रुप बनाने लगता है जो स्वयं उसे ही नष्ट कर देता है।

इस तरह प्रोटीन इंजीनियरों ने एक ऐसी चाल चली जिसमें बैक्टीरिया स्वयं ही आत्महत्या करने को बाध्य होने लगे। इस विधि से औद्योगिक महत्व के कई एंज़ाइम बनाए गए हैं। अनेक दवा बनाने वाली कंपनियों का स्वप्न था ऐसी एंटीबॉडी बनाने का जिन्हें केवल बीमार ऊतक में ही रखा जा सके। अगर ऐसा हो सकता तो अगले दशक में कैंसर, एड्स, गठिया और ऐसी ही अनेक गंभीर बीमारियों का इलाज संभव हो जाता।

वास्तव में एंटीबॉडी प्रोटीन की चार श्रृंखलाओं का संयोजन है - दो लंबी या भारी श्रृंखलाएं और दो छोटी या हल्की श्रृंखलाएं। दोनों भारी श्रृंखलाएं Y आकार की एंटीबॉडी के मुख्य स्तंभ में समानांतर होती हैं लेकिन ऊपर जाकर इसकी बाहें बनाने के लिए फैल जाती हैं। एक-एक हल्की श्रृंखला हर बांह में जुड़ी रहती है। एंटीबॉडी एंटीजन से अपनी बांहों के सिरों द्वारा जुड़ी रहती है जिसे वैज्ञानिक 'परिवर्ती भाग' कहते हैं। ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि एंटीबॉडी के इस भाग में अमीनो अम्लों का अनुक्रम प्रत्येक एंटीबॉडी में अलग होता है जबकि शेष चारों श्रृंखलाएं एक समान होती हैं। चारों में से प्रत्येक श्रृंखला में तीन बंधन स्थल होते हैं जिन्हें 'पूरक पहचान क्षेत्र' या सीडीआर कहते हैं। जैसे ही कोई हमलावर पास आता है, ये सारे सीडीआर पास आकर एंटीजन को पकड़ लेते हैं।

1970 के दशक की बात है जब कैम्ब्रिज में आण्विक जीव विज्ञान की मेडिकल रिसर्च काउंसिल लेबोरेट्री में सीज़र माइलस्टीन और जार्ज कोहलर ने किसी संक्रमण विशेष के लिए पारंपरिक ढंग से काफी मात्रा में एंटीबाडी के रूपांतर बनाए। इनकी प्रारंभिक तकनीक स्पष्ट थी। अगर कुछ विशेष एंटीबॉडी उत्पन्न करने वाली कोशिकाओं को अलग कर लिया जाए और किसी प्रकार उन्हें परखनली में अनिश्चित रूप से बढ़ने दिया जाए तो पहले से सुनिश्चित एक विशेष गुणों वाली एंटीबॉडी उत्पन्न करने के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है। माइलस्टीन और कोहलर ने एक विशेष संक्रमण के विरुद्ध एक एंटीबॉडी उत्पन्न करने के लिए एक चूहे को उत्प्रेरित किया। इसके बाद चूहे के प्लीहा से एंटीबॉडी उत्पन्न करने वाली कोशिकाएं अलग की गईं और कैंसर कोशिकाओं के साथ मिलाकर कोशिकाओं का एक सेट बनाया गया जिसे 'हाइब्रिडोमा' कहते हैं। उचित पोषण मिले, तो हाइब्रिडोमा बार-बार विभाजित होकर असंख्य एंटीबॉडी उत्पन्न करता है।

इस विधि में एक रुकावट भी थी। एंटीबॉडी ट्यूमर कोशिकाओं में जाने के हिसाब से न केवल बहुत बड़ी थी बल्कि वे उग्र प्रतिरक्षी प्रतिक्रियाओं को भी जन्म देती थीं। चूंकि वे चूहे से ली गई एंटीबॉडी थी इसलिए इन्सान का प्रतिरक्षा तंत्र उन्हें बाहरी तत्व समझकर अति उग्र क्रिया दिखाता था।

इंग्लैंड की आण्विक जीव विज्ञान की एमआरसी प्रयोगशाला के क्रेग विंटर ने एक ऐसी तकनीक विकसित की जिससे एंटीबॉडी बनाने में आने वाली समस्याओं का समाधान हो गया। अब एबरडीन, इंग्लैंड की स्काटजेन नामक कंपनी इन 'मानवीकृत' या 'पुनः निर्मित' एंटीबॉडी का विकास कर रही है। मानवीकृत एंटीबॉडी में सामान्य इन्सानी एंटीबॉडी के सभी गुण होते हैं लेकिन इनमें विषाणु को पहचानने की अतिरिक्त क्षमता होती है। इन्हें बनाने के लिए अनुसंधानकर्ताओं ने चूहे की संपूर्ण एंटीबॉडी के अलग-अलग भागों को लिया। पहले उन्होंने इन भागों में डीएनए को पहचाना और उनकी नकल कर उनके अनुक्रम बनाए। इसके बाद इनमें से विशेष डीएनए अनुक्रमों को छांटा जिन पर सीडीआर के लिए कोड निहित था। फिर डीएनए के इन भागों को प्रयोगशाला में बनाया।

उन्होंने मानव के विभिन्न भागों के लिए कोड की गई जीन को लिया और चूहे के संश्लेषित डीएनए को इन पर

प्रत्यारोपित किया। ऐसा करने से उन्हें चूहे की एंटीबॉडी के सीडीआर के बीच दबा मानवीय परिवर्ती भाग मिल गया। अंत में इन पुनः निर्मित भागों को शेष मानवीय एंटीबॉडी से जोड़ दिया गया। इसके परिणामस्वरूप एक जानी-पहचानी Y आकार की एंटीबॉडी प्राप्त की गई जो पूर्ण रूप से मानवीय थी। इस पर प्रतिरक्षी तंत्र द्वारा किसी आक्रमण की संभावना नहीं थी।

अनेक दवा बनाने वाली कंपनियां ऐसे प्रोटीन बनाने के प्रयास कर रही हैं जो औषधि का काम करेंगी। पुनर्योजित मानव वृद्धि हार्मोन और मानवीय इंसुलिन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। वैसे प्रोटीन आधारित चिकित्सा में अनेक कठिनाइयां सामने आई हैं। पाचक एंज़ाइमों के कारण इन्हें खाया नहीं जा सकता, क्योंकि वे इन प्रोटीनों को पचा डालेंगे। इसके अतिरिक्त रक्त प्रवाह में इन बड़े अणुओं का कोशिका भित्ति में प्रवेश करना भी कठिन है। इन कठिनाइयों को दूर कर भी दिया जाए तो इन प्रोटीनों के कारण एक और समस्या एलर्जी की भी है। अगर ये सब कठिनाइयां न भी हों तो ये प्रोटीन कोशिका के बाहर जैविक रूप से इतने सक्रिय नहीं होते।

अमरीका में कैलिफोर्निया के लाजोला स्थित रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों जेराल्ड जाटस और एम्बर ब्यूदरी ने प्रोटीन बनाने का एक आसान विकल्प बताया है। उनके अनुसार ये काम काफी बड़ी मात्रा में संदेशवाहक आरएनए को लेकर किया जा सकता है जिनमें से प्रत्येक वांछित प्रोटीन के आण्विक परिवर्ती के लिए ब्लू प्रिंट का काम करेगा। इन ब्लू प्रिंट्स को सम्बंधित प्रोटीन पर स्थानांतरित किया जाता है और इस प्रकार बने प्रोटीन को एक विशिष्ट अणु से जुड़ने जैसा जैव रासायनिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। चूंकि इसका ब्लू प्रिंट ज्ञात होता है, इसे इच्छानुसार बनाया जा सकता है या फिर बेहतर प्रोटीन बनाने के लिए इसमें परिवर्तन भी किए जा सकते हैं। प्रोटीन इंजीनियरों को आशा है कि आने वाले समय में अधिक सक्षम प्रोटीन अधिक मात्रा में बनाए जा सकेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

फॉर्म 4 (नियम - 8 देखिए)

मासिक स्रोत विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स पत्रिका के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बंध में जानकारी

प्रकाशन	: भोपाल	सम्पादक का नाम	: सुशील जोशी
प्रकाशन की अवधि	: मासिक	राष्ट्रीयता	: भारतीय
प्रकाशक का नाम	: (सी.एन. सुब्रह्मण्यम) निदेशक, एकलव्य	पता	: एकलव्य, ई-7/एच आई जी 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016
राष्ट्रीयता	: भारतीय		
पता	: एकलव्य, ई-7/एच आई जी 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016	उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है	: (सी.एन. सुब्रह्मण्यम) निदेशक, एकलव्य
मुद्रक का नाम	: (सी.एन. सुब्रह्मण्यम) निदेशक, एकलव्य	राष्ट्रीयता	: भारतीय
राष्ट्रीयता	: भारतीय	पता	: एकलव्य, ई-7/एच आई जी 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016
पता	: एकलव्य एकलव्य, ई-7/एच आई जी 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016		

मैं सी.एन. सुब्रह्मण्यम, निदेशक, एकलव्य यह घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

1 जनवरी 2010

सी.एन. सुब्रह्मण्यम,
निदेशक, एकलव्य